समुदाय व संरक्षण

समुदय आधारित जैवविविधता संरक्षण तथा आजीविका सुरक्षा

अंक २, नं. १, जनवरी २००६

Kalpavriksh Environment Action Group

विषयवस्तु

२ ..... संपादकीय

३.....उदाहरणात्मक अध्ययन
बारानाजा प्रणाली

४ .....भारत के राज्यों से समाचार

गुजरात
- आशीराबांध गाँव

हिमाचल प्रदेश
- चीड़ के जंगलों से जैवविविधतापूर्ण जंगलों तक

कर्नाटक
- चमगादड़ों के लिए आवास स्थल

महाराष्ट्र
- एक गांधीवादी सपना
- एक मयूरी गाँव

नागालैंड
- खोनोमा नेचर कंज़रवेशन

उड़ीसा
- साल और सियाली
- चमगादड़ों के लिए एक और आश्रय

पश्चिम बंगाल
- गंदे नाले का रचनात्मक प्रयोग
- सुन्दरबन के मैनग्रोव

११ .....अंतर्राष्ट्रीय समाचार
- तारेवलाता आदिवासी
. सूक्ष्म ऋण में क्या छिपा है ?

संपादकीय

पिछले कुछ संपादकीय अनुच्छेदों में हमने कानूनों, नीतियों, नियमों व विनियमों के विषय पर चर्चा की है। जहां एक ओर इन सब कानूनों के कारण विश्व में न्यायसंगत एवं तुल्यात्मक मूल्यों को मज़बूती मिली है, वहां यह भी याद रखना ज़रूरी है कि इन कानूनों, नियमों एवं संस्थाओं का कारगर होना, उनसे जुड़े लोगों पर निर्भर होता है।

जहां विश्व भर में संपादकों को मजबूरन सत्यम घोटाले के रामालिंग राजू, पोन्ज़ी योजना के घोटाले में शामिल बरनार्ड मैडौफ और विषैले दूध के धोखे से जुड़े तियान वेन्हुआ के विषय में लिखना पड़ रहा है, वहां जरधार गांव के श्री. विजय जरधारी, बारीपाड़ा के श्री.चैतराम पवार और चिंचोली मोराची की बूढ़ी अज्ञात महिला के विषय में लिखते हुए हम अपने आप को अत्यंत भाग्यशाली महसूस करते हैं। ये सभी लोग जैवविविधता संरक्षण और अन्य उच्च आदर्शों की ओर प्रतिबद्धता की कड़ी से जुड़े हुए प्रतीत होते हैं। कभी-कभी तो यह प्रतिबद्धता इतनी स्पष्ट नज़र आती है कि उनके संपर्क में आने वाले लोग उससे अछूते नहीं रह पाते हैं और उसी के रंग में रंग जाते हैं।

हम ऐसे लोगों के प्रति कृतज्ञता से इस नए वर्ष की शुरुआत करते हैं। और साथ ही यह आशा करते हैं कि बडे पैमाने में स्पष्ट सोचनेवाले, एकाग्र चरित्रवाले और दृढ़संकल्पी लोग इस कार्य में जुड़ते रहें।

बारानाजा प्रणाली

जरधार गाँव उत्तरी भारत के उत्तराखंड राज्य की टिहरी गढ़वाल तहसील में १५०० मीटर की ऊंचाई पर बसा हुआ एक गाँव है। जरधार गाँव में ४२६.५ हैक्टेयर क्षेत्रफल में फैले शंकुधारी जंगल, चारागाह (सिविल स्वयं जंगल) और घने आरक्षित वन हैं, जिनमें मुख्यतः बांज तथा बुरांश के पेड़ हैं। यहां के लोगों का मुख्य व्यवसाय खेती है।

यह गाँव गढ़वाल के उसी क्षेत्र में है जहां चिपको आन्दोलन प्रारंभ हुआ था। चिपको आन्दोलन की शुरूआत १९८० के दशक में हुई जब स्थानीय लोगों ने ठेकेदारों द्वारा भारी मात्रा में पेड़ काटे जाने का विरोध किया। इस आन्दोलन के कारण उत्तराखण्ड क्षेत्र में १००० मीटर से ऊपर के इलाकों में पेड़ की कटाई पर १५ वर्ष का प्रतिबंध लगाया गया था। जरधार गाँव भी इस आन्दोलन के प्रभाव में आया, मुख्यतः क्योंकि यहां के निवासी श्री विजय जरधारी आन्दोलन में सक्रिय रहे।

आन्दोलन समाप्त होने के बाद घर लौटे श्री जरधारी ने अपने गाँव में संरक्षण आंदोलन की शुरूआत की। १९८० में गाँव के निवासियों ने सिविल स्वयं वनों (जो कि गाँव के उपयोग के लिए आरक्षित थे) तथा आरक्षित वनों (जो कि सरकारी थे) के संरक्षण के लिए एक वन सुरक्षा समिति का गठन किया। आरक्षित वन, जहां अधिकतर चौड़ी पत्ती के पेड़ थे, १९८० तक काफी क्षतिग्रस्त हो चुके थे। गाँव वालों ने कोई भी सरकारी पुनः पौधारोपण कार्यक्रम नहीं अपनाया, बल्कि जंगलों को स्वतः पुनर्जनन के लिए छोड़ दिया। लोगों ने निर्णय लिया कि वे मवेशियों को इस क्षेत्र में नहीं चराएंगे तथा जलाऊ लकड़ी तथा इमारती लकड़ी का उपयोग बंद कर, इस क्षेत्र को आग से बचाएंगे। आज लगभग ३० साल बाद एक समय के उजड़े हुए इन जंगलों में अब विभिन्न प्रकार के पेड़ जैसे बांज, बुरांश, पांगण, चीड़, आदि काफी घने रूप में पाए जाते हैं। १९९० के दशक में 'जी. बी. पंत इन्स्टिट्यूट ऑफ हिमालयन एन्वायरनमैंट एण्ड डैवलपमैंट' के अध्ययन में इन जंगलों में अन्य सरकारी जंगलों से अधिक विविधता का आंकलन किया गया। इस गाँव में सैंकड़ों पक्षी प्रजातियां, जंगली सुअर, हिरन प्रजातियां, तेंदुआ और काले भालू पाए जाते हैं और कभी-कभी बाघ भी देखे जाने की खबरें यहां से प्राप्त हुई हैं।

इन वन संरक्षण गतिविधियों के बाद एक और आन्दोलन शुरू हुआ - बीज बचाओ आन्दोलन। यह आन्दोलन सरकार द्वारा चलाई गई हरित क्रान्ति के प्रभाव से पीड़ित किसानों की समस्याओं के जवाब में चलाया गया। कृषि उत्पादकता में एक शुरूआती उछाल के बाद, हरित क्रांति के कारण कई सालों तक मिट्टी की उत्पादन क्षमता कम होने, कमजोर बीज और स्थानीय लोगों की सरकारी एवं बाहरी एजेंसियों पर निर्भरता बढ़ने जैसे प्रभाव सामने आए। इसके अतिरिक्त बाज़ारी फसलों पर अधिक जोर होने के कारण, गाँव के अंदर खाद्य-पदार्थों की विविधता तथा जंगल से उपलब्ध या उगाए जाने वाले खाद्य-पदार्थों की कमी से, स्थानीय लोगों के स्वास्थ्य में गिरावट आने लगी। श्री विजय जरधारी ने गाँव के बड़े-बूढ़ों से चर्चा की तो उन्हें सलाह दी गई कि वे आसपास के जंगलों या खेतों से पारंपरिक बीजों की खोज करें और उन्हें वापिस खेतों में लाएं। इसका मतलब था कि कृषि के पारंपरिक तरीकों को फिर से चालू किया जाए। ऐसी ही एक कृषि शैली है बारानाजा, जिसमें एक ही खेत में, एक ही समय में १२ प्रजातियां उगाई जाती हैं। हालांकि देखने में ऐसा लगता है कि अनाज, दालों, सब्जियों, लताओं और कंदों को ऊट-पटांग तरीके से उगाया जा रहा है - यह एक अत्यंत ही सतत और परखी हुई कृषि प्रणाली है।

इस आन्दोलन के कारण आज विभिन्न प्रजातियों को पुनर्जीवन मिला है, जिसमें २०० प्रकार की सेमें, १०० प्रकार के धान और ३२० प्रकार की गेहूँ प्रजातियां शामिल हैं। ज़रूरत से अधिक उत्पादन को दिल्ली के बाजारों में विविधारा तथा कल्पवृक्ष जैसी संस्थाओं के

सहयोग से बेचा जाता है। जैविक खाद्य-पदार्थों की बढ़ती मांग से इस अद्‌भुत गाँव के निवासियों के लिए आमदनी के अवसर भी बढ़े हैं। और इसी कारण गाँव के अन्य किसान व पड़ोसी गाँवों के किसान भी अब पारंपरिक बीजों व कृषि प्रणालियों की तरफ लौट रहे हैं।

जहां इस संरक्षण प्रयास के कारण गांव वालों को निरंतर फायदे मिले हैं, वहीं दूसरी ओर लोगों को कई चुनौतियों का सामना भी करना पड़ा है। एक मुख्य समस्या है कि संरक्षण के कारण घरों पर धावा बोलने वाले बंदरों, खेतों का नुकसान करने वाले जंगली सुअरों और मक्का/बाजरा आदि फसलों और जंगली फलों के भक्षी भालुओं की संख्या काफी बढ़ गई है। आधिकारिक स्तर पर यह क्षेत्र वन विभाग के अंतर्गत आता है, पर वनाधिकारियों को अभी तक इस समस्या का कोई समाधान नहीं मिल पाया है। चूने के पत्थरों की खदानों के रूप में लोगों के सामने एक और चुनौती उठ खड़ी हुई है। स्थानीय लोग चूने की खदानों का पुरजोर विरोध कर रहे हैं क्योंकि इनसे न केवल स्थानीय जैव-विविधता, बल्कि लोगों की आजीविकाओं पर भी गहरा प्रभाव पड़ेगा। इसके अतिरिक्त, सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त वन पंचायत और गांव की अनौपचारिक वन सुरक्षा समिति के आपसी मतभेदों के कारण भी कई समस्याएं पैदा हुईं। हाल ही में, इन दोनों संस्थाओं के बीच सामन्जस्य बढ़ा है।

स्रोतः जरधार गाँव समुदायों द्वारा संरक्षित क्षेत्र - कल्पवृक्ष सदस्यों द्वारा जरधार गाँव के लोगों से की गई चर्चा पर आधारित एक रिपोर्ट, जुलाई २००८

संपर्कः विकल समदरिया, vikalsam@rediffmail.com, मश्कुरा फरीदी, mashqura@gmail.com, आशीष कोठारी, ashishkothari@vsnl.com

भारत के राज्यों से समाचार

गुजरात

आशीराबांध गाँव

वर्ष २००० का अंत होते-होते, कच्छ क्षेत्र के अब्डासा तालुका में बसे आशीराबांध गाँव में प्राकृतिक संसाधनों की भारी कमी हो चुकी थी। पिछले कुछ सालों में स्थानीय लोगों ने इस क्षेत्र के मैनग्रोव जंगलों (समुद्र तटीय क्षेत्रों में नदी और समुद्री पानी के मेल से तैयार विशेष प्रकार के वन) को ज़रूरत से ज़्यादा उपयोग करके इतना क्षतिग्रस्त कर दिया था, कि इसके कारण मछली उत्पादन में भारी गिरावट आ गई और स्थानीय मछुआरों की आजीविकाओं पर इसका गंभीर परिणाम हुआ। २००१ में, 'इंडिया-कैनेडा एन्वायरनमैंटल फैसिलिटि' (आई.सी.ई.एफ) ने गुजरात के मैनग्रोव जंगलों के पुनर्स्थापन के लिए आर्थिक सहयोग दिया। इस परियोजना के अतंर्गत, अशीराबांध गाँव के ५५ परिवारों को समुदाय-आधारित मैनग्रोव पुनर्स्थापना कार्यक्रम को लागू करने के लिए चुना गया।

५ वर्षों में किए जाने वाले कार्य के लिए कुल ५० लाख रूपये कीमत आंकी गई। शुरूआत में, आई.सी.ई.एफ. ने गाँव को उत्साहित करने के लिए कई प्रकार की आम सुविधाएं उपलब्ध करवाईं। परियोजना की ओर से पेयजल की व्यवस्था और गाँव में प्राथमिक पाठशाला तैयार करवाई गई। इसके अतिरिक्त, ४ लाख रूपये की राशि ग्रामीण विकास कोष के लिए भी दी गई।

इस परियोजना के अंतर्गत राजस्व विभाग ने भी कुछ भूमि गाँव वालों को ३० साल की लीज़ पर दी। इस सब से प्रोत्साहित हो कर, गाँव के निवासियों ने गाँव की सीमा पर लगभग २५१ हैक्टेयर क्षेत्र में पौधारोपण किया, जहां पौधे आज १ मीटर से ज़्यादा ऊंचे हो गए हैं। क्षेत्र में मिट्‌टी/गाद का भराव कम हो गया है, जिससे समुद्री जीव जंतुओं और मछलियों की संख्या में भी वृद्धि हुई है। इसके कारण समुद्री आपदाओं से बचने के लिए एक सुरक्षा पट्‌टी भी तैयार हो गई है। मैनग्रोव के पुनर्जनन से स्थानीय मवेशियों के लिए चारा भी उपलब्ध हो रहा है।

२००६ में परियोजना समाप्त हो गई और अब गाँव के लोग, 'गुजरात इंस्टिट्यूट ऑफ डैज़र्ट ईकौलॉजी' (गाईड) के सहयोग से इस क्षेत्र की देख-रेख कर रहे हैं। श्री. जी.ए. थीवाकरन, गाईड के जीव-वैज्ञानिक का मानना है कि परियोजना से बहुत फायदा हुआ है। श्री. श्याम गांधवी, गाँव के एक निवासी के अनुसार, "इस स्थिति में हमें हर तरफ से फायदा मिला। गाँव को एक कल्याण कोष मिल गया और मैनग्रोव के साथ-साथ एक स्कूल और पेयजल की सुविधा भी।"

स्रोतः सौरव कुमार, 'मैनग्रोव कन्ज़रवेशन प्रौजैक्ट प्रूव्स अ विन विन सिचुएशन फॉर कच्छीज़', इंडियन एक्सप्रैस, मार्च, २००८

हिमाचल प्रदेश

चीड़ के जंगलों से जैवविविधतापूर्ण जंगलों तक

१५ साल पहले, मंडी ज़िले की करसोग तहसील की पहाड़ियां पूरी तरह से चीड़ के एकाधिकार से घिरी थीं। इसका मुख्य कारण था कि इसका ज़्यादा रख-रखाव नहीं करना पड़ता है, चीड़ मवेशियों द्वारा भी नहीं खाया जाता, और आग लगने के बाद यह जल्दी ही बढ़ने लगता है। और इसीलिए वन विभाग के अधिकारी इस प्रजाति को प्राथमिकता देते थे। इस प्रजाति के पक्ष में एक और कारण रहा है इसका गोंद, जिसको इकट्ठा करने और अन्य जुड़े कार्यों में राज्य के लगभग ४०,००० लोगों को व्यवसाय मिला हुआ है।

परंतु चीड़ के जंगल स्थानीय लोगों के लिए अधिक फायदेमंद नहीं हैं। स्थानीय लोग चाहते हैं कि जंगल में अलग-अलग प्रकार की चौड़ी पत्ती के पेड़ हों, जिनसे उन्हें मवेशियों के लिए चारा और खेतों के लिए जैविक खाद प्राप्त हो सके। लेकिन चीड़ के फैलाव के कारण उन्हें कुछ भी नहीं मिलता था और चीड़ अत्यधिक ज्वलनशील होने के कारण, जंगलों में आग लगने का खतरा भी बना रहता था। १९९२-९३ में जंगलों तक अपनी पहुंच न होने से तंग आकर स्थानीय महिलाओं ने तय किया कि वे खुद ही इन जंगलों में विविध प्रकार के पेड़ लगाने की ज़िम्मेदारी संभालेंगी। यह प्रयास करसोग तहसील के लगभग ८० गाँवों में फैल गया है। और आज चीड़ के फैलाव वाले जंगलों में अन्य कई प्रकार की प्रजातियों जैसे आंवला, अनार/दाड़िम, बांज और अनेक चारा उपलब्ध करवाने वाले पेड़ देखे जा सकते हैं।

हालांकि स्थानीय लोगों के दबाव के कारण वन विभाग ने चीड़ के फैलाव पर नियंत्रण किया है, परंतु वन विभाग के कुछ अधिकारी अभी भी चीड़ को ही पसंद करते हैं। वन विभाग के कर्मचारियों और गाँव वालों के बीच जंगल में लगाई जाने वाली प्रजातियों के चुनाव में लोगों की भागीदारी के विषय में मतभेद हैं। लेकिन गाँव वालों को लगता है कि जहां सामुदायिक वन समितियां सशक्त हैं, वहां विभाग लोगों की अवहेलना नहीं कर सकता है। और विभाग स्थानीय लोगों की सलाह से चीड़ के साथ साथ अन्य प्रजातियों का भी पौधारोपण करता है।

स्रोतः अर्चिता भट्ट, 'बैंकिंग ऑन वैराएटी', डाउन टू अर्थ, नवम्बर २००७

कर्णाटक

चमगादड़ों के लिए आवास स्थल

कर्नाटक के टुमकुर ज़िले में गिदाड़पालया एक कृषि-प्रधान गाँव है। यहां गाँव वाले टमाटर, रांगी, सुपारी, खोपरा, सपोटा, तथा अन्य सब्जियों की खेती करते हैं। इस गाँव के चारों ओर कैजुरीना, अकेशिया और अन्य स्थानीय प्रजातियों जैसे पीपल, पलाश और इमली का पौधारोपण किया गया है।

इस गाँव में कई पीढ़ियों से चमगादड़ निवास करते आए हैं। हाल ही के कुछ सालों में इन पर और ज़्यादा ध्यान दिया जा रहा है। पिछले लगभग २० सालों से श्री गंगाधर की जमीन पर लगभग १०,००० वर्ग मीटर क्षेत्र में चमगादड़ों ने अपना आवास बना रखा है। इन चमगादड़ों को आस-पास के क्षेत्र से आने वाले शिकारियों से खतरा

बना रहता है, जो प्रत्येक चमगादड़ को २०० रूपये में बाजार में बेचते हैं।

इस स्थल पर ३० बरगद के पेड़ हैं और साथ ही बांस के झुरमुट भी। चमगादड़ों के आवास-स्थल पर एक मंदिर भी है और गाँव वाले चमगादड़ों की सुरक्षा को अपना धार्मिक कर्तव्य मानते हैं। गाँव वाले इस क्षेत्र की चौकीदारी करते हैं और शिकारियों को बाहर भगा देते हैं। इस संरक्षण प्रयास के कारण न केवल चमगादड़ों की संख्या में वृद्धि हुई है (वर्तमान में लगभग २६०० चमगादड़ हैं) बल्कि क्षेत्र की अन्य जैवविविधता का भी विकास हुआ है। इस स्थल पर कुछ अन्य जानवर जैसे नेवला, जंगली सुअर, जंगली खरगोश, चूहे, लोमड़ी, सांप और पक्षी जैसे मोर, कठफोड़वा, उल्लू, क्लोरोप्सिस, कुकु आदि भी देखे गए हैं।

चमगादड़ों से कई तरह के फायदे होते हैं जैसे परागण, बीज छिड़काव तथा खेती के लिए हानिकारक कीटों का नियंत्रण। यह गांव एक कृषि प्रधान समुदाय है, जो कि मुख्यतः जैविक खेती करता है और चमगादड़ों का इस, समंदाय की आजीविकाओं से सीधा जुड़ाव है। चमगादड़ों के आवास स्थल से भारी मात्रा में इकट्ठा किया गया मल एवं सूखी पत्तियां स्थानीय समुदाय की सतत कृषि प्रणालियों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। यह उपजाऊ खाद हर साल अप्रैल के माह में इकट्ठी की जाती है और सभी गाँव वाले इसे रागी, सुपारी, खोपरे और अन्य फसलों के लिए उपयोग करते हैं।

समुदायों द्वारा एक संकटग्रस्त प्रजाति के संरक्षण का यह एक और उदाहरण है जिसके पीछे कई कारण जुड़े हुए हैं। आज इस क्षेत्र को कानूनी रूप से संरक्षित करने की आवश्यकता है और इसी कारण गाँव वाले इस क्षेत्र को एक विरासती स्थल (हैरिटेज साईट) घोषित करवाने का प्रयास कर रहे हैं।

स्रोतः ए.के. चक्रवर्ती, 'अ केस आफ जायंट इंडियन फ्रूट बैट रूस्ट इन कर्णाटका, साउथ इंडिया फार डेकलेरेशन एज़ अ कम्यूनिटि हैरिटेज साईट'

संपर्कः ए.के. चक्रवर्ती, और एच.एम.वाई यशवंत, डिपार्टमैंट आफ एगरीकल्चर एन्टोमोलौजी, युनिवर्सिटि आफ एगरीकल्चर साईंसिस, जी.के.वी.के, बंगलूरू - ५६००६५, कर्णाटक
ईमेल : chakravarthyakshay@yahoo.com

महाराष्ट्र

एक गांधीवादी सपना

धुले ज़िले का आदिवासी गाँव बारीपाड़ा १५ साल पहले तक बुरी तरह से उजड़े हुए जंगल से घिरा हुआ था। इसके कारण गाँव में पानी की कमी, सूखे और लोगों के पलायन की स्थिति बन गई थी। परंतु, आज यह गाँव विश्व भर में प्रसिद्ध है और आदर्श गाँव के रूप में इसे कई पुरुस्कारों से भी सम्मानित किया गया है। इस बदलाव में गाँव के गांधीवादी और लौह पुरूष श्री. चैतराम पवार की एक बड़ी भूमिका रही है।

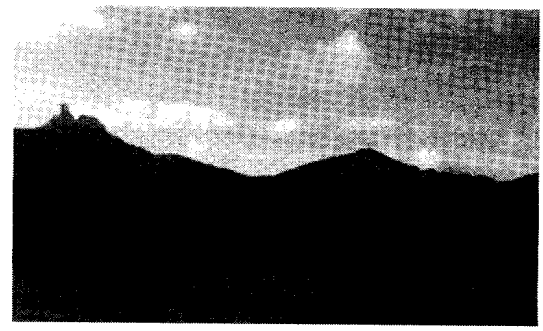

१९९२ में श्री.चैतराम पवार व उनके युवा साथियों ने लगभग १०,००० एकड़ क्षेत्र पर पौधारोपण किया। शुरूआत में उन्हें गाँव के बड़े-बूढ़ों से काफी विरोध व उपहास का सामना करना पड़ा, जिनका मानना था कि वनीकरण एवं पौधारोपण करना सरकार का काम है। लेकिन युवाओं का संकल्प कामयाब हुआ और यह प्रयास अंततः एक सर्वांगीण ग्राम विकास योजना में बदल गया। श्री.चैतराम पवार, जिन्हें विश्वास था कि गांव वालों की आजीविकाएं आस-पास के वातावरण से जुड़ी हुई हैं, ने अपने गाँव वालों के साथ मिलकर, इस पौधारोपण क्षेत्र के संरक्षण के लिए एक ग्राम विकास समिति का गठन किया। इस समिति ने कई नियम बनाए और उन्हें सख्ती से लागू भी किया। जलाऊ लकड़ी (गिरी-पड़ी) साल में केवल एक बार इकट्ठी की जा सकती है, मवेशियों को चराने के लिए निर्धारित स्थल तय किये गए और अन्य क्षेत्रों में मवेशियों के प्रवेश पर प्रतिबंध लगाया गया। इनमें से कोई भी नियम तोड़े जाने पर जुर्माना लगाया गया। गाँव के लोगों ने सभी संरक्षण एवं विकास के कार्यों के लिए चंदा इकट्ठा किया। गाँव के बड़े-बूढ़ों ने 'जंगल के चौकीदारों' की भूमिका निभाई और इसके लिए उन्हें गाँव में एकत्रित किए गए कोष में से मानदेय दिया गया।

इस प्रयास के परिणाम आज सभी के सामने हैं। गाँव के चारों ओर आज ११,००० एकड़ का घना जंगल है। घना जंगल होने के कारण पानी रोकने में काफी मदद मिली जिससे कृषि में भी फायदा मिला। एक समय में सूखा-ग्रस्त यह गाँव आज कई प्रकार की फसलें उगाता है जैसे धान, जोवार और सोयाबीन। प्रचुर मात्रा में तिलहन फसलें भी उगाई जाती हैं। हालांकि गाँव में बिजली उपलब्ध है, स्वावलम्बी बनने के प्रयास में लोग कुछ जंगली पौधों के अवशेषों का जैविक ईंधन के रूप में उपयोग करने का विचार कर रहे हैं। जहां एक समय में गाँव के लोगों को ३ किलोमीटर दूर पानी लेने जाना पड़ता था, वहीं आज यह गाँव ५ अन्य गाँवों को पानी पहुंचा रहा है। पहले के १५ एकड़ सिंचित क्षेत्र को बढ़ा कर आज १२० एकड़ कर दिया गया है।

श्री. चैतराम पवार जैसे निवासियों, पुणे की संस्था, वनवासी कल्याण आश्रम जैसे सहयोगियों और एक संगठित समुदाय के कारण बारीपाड़ा गाँव भारत के अन्य गाँवों के लिए प्रेरणा की एक मिसाल बन गया है।

स्रोतः अदिति उत्पत, 'द रोड टू बारी पाड़ा', संडे टाइम्स आफ इंडिया, जुलाई २००८ और कल्पवृक्ष के सदस्यों की गांव वालों के साथ चर्चा

संपर्कः संपादकीय पते पर

एक मयूरी गाँव

चिंचोली मोराची गाँव, पुणे-अहमदनगर उच्च मार्ग पर, पुणे से लगभग ६० कि.मी. की दूरी पर बसा है। गाँव के नाम से ही स्पष्ट है कि यहां इमली के पेड़ और मोर रहते हैं। अपने नाम को सिद्ध करते हुए, इस गाँव में मनुष्य की आबादी के बराबर (२०००) ही मोर भी निवास करते हैं।

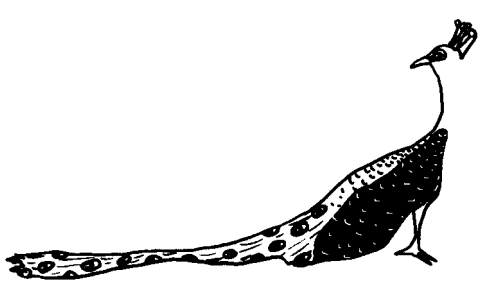

मोरों का आदर करने के साथ-साथ, गाँव वाले इनकी सुरक्षा भी करते हैं - क्योंकि उनके अनुसार, मोर उनके देवता खंडोबा का वाहन है। श्री. एस.एच. फालके, स्थानीय कृषि संस्थान के एक अध्यापक, का कहना है, "यहां लोग मोरों को अपने बच्चों की तरह प्यार करते हैं। यही कारण है कि खेतों में बीज डालते समय सभी लोग ज़रूरत से थोड़ा ज़्यादा बीज डालते हैं, जिससे कि मोरों को भी खाने के लिए पर्याप्त अन्न मिल जाए। सूखे की स्थिति में भी, जब चारों ओर पानी सूख जाता है, लोग ध्यान रखते हैं कि मोरों को पीने के लिए पर्याप्त पानी हो।" मोर किसानों के लिए लाभदायक भी हैं। वे सांपों की संख्या पर नियंत्रण रखते हैं और फसलों को नुकसान पहुंचाने वाले कीड़ों को खाकर प्राकृतिक नियंत्रण बनाए रखते हैं।

पिछले साल महाराष्ट्र पर्यटन विभाग ने चिंचौली मोराची को एक पर्यटक ग्राम का दर्ज़ा दिया। गाँव के निवासी अभी तक मोरों के माध्यम से पैसा कमाने की बात नहीं सोचते हैं। बल्कि उन्हें चिंता है कि पर्यटन के कारण इस शर्मीले पक्षी पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? गाँव में प्रवेश करने पर ऐसा नहीं लगता कि यह एक पर्यटक स्थल है - गाँव की कच्ची, पतली पगडंडियों पर चलते गांव वाले या निर्माण कार्य पर लगे मज़दूर जब पर्यटकों को मोरों के बहुत पास जाते हुए देखते हैं, तो वे उन्हें ऐसा करने से मना करते हैं।

गाँव के सरपंच (जो एक गैर सरकारी संस्था के अध्यक्ष भी हैं) इस गांव को एक पर्यटक स्थल बनाने में जुटे हैं - उन्होंने अपनी ज़मीन पर कुछ मूलभूत सुविधाएं बनानी शुरु कर दी हैं। इससे गाँव के निवासियों या पक्षियों को कुछ फायदा होगा या नहीं, यह तो समय के साथ ही पता चलेगा।

स्रोतः अतुल सेठी, 'व्हेयर पीकौक्स एन्ज्वाय प्राईड ऑफ पर्च', टाइम्स ऑफ इंडिया, फरवरी २००८ और कल्पवृक्ष के सदस्यों की गांव वालों के साथ चर्चा।

नागालैंड

खोनोमा नेचर कंज़रवेशन

खोनोमा नागालैंड में स्थित एक गाँव है और यहां गौरवशाली आदिवासी अंगामी निवास करते हैं, जो पारंपरिक रूप से अपनी बहादुरी, शौर्य और शिकार की महारथ के लिए जाने जाते हैं। यह क्षेत्र एक समय में अपनी जैव विविधता और जंगली जीवों के लिए मशहूर था, पर अत्याधिक शिकार व पेड़ों की कटाई के कारण १९९३ तक यह सब नष्ट होने लगा था। परंतु पिछले ६ सालों में खोनोमो के संरक्षण प्रयास काफी प्रेरणादायक रहे हैं।

१९९४ तक इस गाँव में आए सभी अतिथियों को लोग दिल खोलकर भोजन कराया करते थे, जिसमें विभिन्न प्रकार के जंगली शिकार से व्यंजन बनाये जाते थे। लेकिन १९९५ में स्थानीय वन्य जीवों की संख्या में भारी गिरावट से चिंतित होकर तथा गाँव के सयाने लोगों, जैसे श्री. सिली साखरी के प्रयासों के कारण, वन विभाग के अफसरों, जैसे श्री. टी.अंगामी और कुछ संस्थाओं, जैसे 'सैन्टर फार एन्वायरनमैंट एंड ऐजुकेशन' तथा गाँव समिति ने मिलकर नियम बनाए कि गांव के १२५ वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में कोई शिकार नहीं करेगा। ७० वर्ग किलोमीटर क्षेत्र को ट्रैगोपैन पक्षी के लिए पूर्ण रूप से आरक्षित रखा जाएगा। जहां किसी भी प्रकार के वन्यजीवों का शिकार व वन में पाए जाने वाले संसाधन एकत्रित नहीं किए जाएंगे। फसलों को नुकसान पहुंचाने वाले हिरणों और जंगली सूअरों के नियंत्रित शिकार की अनुमति दी गई और शिकार बेचने पर पूरी तरह से पाबंदी लगाई गई। इन नियमों को तोड़ने वालों पर ३०० रूपये से ३००० रूपये तक का जुर्माना लगाया गया। शिकार रुकने और बिक्री पर प्रतिबंध के कारण स्थानीय लोगों की उपजीविका व आमदनी पर प्रभाव तो पड़ा लेकिन नियमों को लागू किया गया और लोगों ने इनका पालन भी किया।

१९९८ में स्थानीय लोगों ने खोनोमा नेचर कंज़रवेशन एंड ट्रैगोपैन अभ्यारण्य की घोषणा कर दी। गाँव समिति ने स्थानीय नियमों को लागू करने के लिए स्थानीय संस्था बनाई। वर्ष २००० तक शिकार पूरी तरह से बंद हो गया और धीरे-धीरे गाँव में, अभ्यारण्य में और पास की जुकु घाटी में वन्यजीव लौटने लगे। वर्तमान समय में यहां ट्रैगोपैन पक्षी के अतिरिक्त काला भालू तथा अन्य कई प्रकार के वन्य जीव पाए जाते हैं। इस क्षेत्र का प्रसिद्ध जुकु लिलि फूल और ४० से अधिक प्रजातियों के आर्किड (पहाड़ी क्षेत्रों के खास फूल), सिराव, सांबर हिरण और तेंदुआ यहां पाए जाते हैं। खोनोमा को 'महत्वपूर्ण पक्षी क्षेत्र' (Important Bird Area) की मान्यता भी प्राप्त है। श्री. फिरोज़ अहमद, एक जीव वैज्ञानिक, जो इस क्षेत्र की जैव विविधता का अध्ययन कर रहे हैं, उनके अनुसार इस क्षेत्र में मेंढकों की २० प्रजातियां पाई जाती हैं। खोनोमा की विशिष्ट कृषि प्रणाली के कारण यहां अद्भुत कृषि जैव विविधता भी पाई जाती है, जिसमें ६० प्रजाति के धान और विविध प्रकार के अन्य अनाज शामिल हैं।

केन्द्रीय और राज्य सरकारें मिलकर इस संरक्षणरत समुदाय के लिए पर्यटन-आधारित आजीविकाओं का विकास करने का प्रयास कर रही हैं। वर्ष २००३ में खोनोमा पर्यटन बोर्ड का गठन किया गया और स्थानीय लोगों को गाइड, यात्रा व्यवस्थापक और दुभाषियों के रूप में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया गया। पर्यटन एवं संस्कृति के केन्द्रीय मन्त्रालय ने गाँव को अपनी हरित परियोजना में शामिल किया, जिसके अंतर्गत खोनोमा में अच्छी सड़कें और सौर ऊर्जा उपलब्ध कराई गईं।

जहां इस प्रयास के कारण क्षेत्र में निश्चित रूप से जैवविविधता और वन्यजीव लौट आए, वहीं आजीविकाओं का मुद्दा थोड़ा जटिल साबित हुआ। कई लोगों को यह लगता है कि यह प्रयास पूरी तरह सफल रहा है और

खोनोमा एक प्रेरणादायक माडल बन सकता है। वहीं कुछ लोगों को लगता है कि, इस प्रयास से कई स्थानीय लोगों को केवल व्यक्तिगत लाभ मिले हैं। गाइडों, सांस्कृतिक कार्यक्रम पेश करने वालों और व्यक्तिगत परिवारों को भुगतान तो हुए हैं, पर संपूर्ण गाँव को इससे कुछ खास फायदा नहीं मिला है।

स्रोतः अमरज्योति बोराह, 'वैलकम टू खोनोमा-ईको टूरिज्म अ सक्सैस इन अ नागालैंड विलेज', डाउन टू अर्थ, मार्च, २००८

उड़ीसा

साल और सियाली

मझियाखंड गाँव, नयागढ़ ज़िला, उड़ीसा में भगवान जगन्नाथ के उत्सव से कुछ महीने पहले, गाँव की औरतें मिलकर दीमक की मिट्टी, गोबर और गोमूत्र के मिश्रण से अंडा नुमा गोले तैयार करती है, जिसमें सियाली पेड़ के बीजों को दबा कर उन्हें संरक्षित रखा जाता है। यह सूखे गोले भगवान जगन्नाथ के स्नानोत्सव के समय तोड़े जाते हैं, और सियाली के बीजों का अपने स्वास्थ्य और समृद्धि की पूजाओं के साथ, बीजारोपण किया जाता है।

पर्यावरण वैज्ञानिकों का कहना है कि क्षेत्र की महत्वपूर्ण जैवविविधता के संरक्षण का यह पारंपरिक तरीका है। सियाली और साल पेड़ों की पत्तियां क्षेत्र के आदिवासी लोगों के लिए पीढ़ियों से आजीविका का एक मुख्य स्रोत रहा है और इनकी बिक्री के कारण ही यह लोग कई बार भुखमरी की स्थिति से बच पाए हैं।

एक व्यक्ति लगभग १००० से २००० पत्ते एक दिन में इकट्ठे कर लेता है, जिससे २०० पतलें बन जाती हैं, जिन्हें कम-से-कम ६० रूपये में बेचा जा सकता है। यह व्यापार सुव्यवस्थित नहीं है, पर कुछ अनुमानों के अनुसार, उड़ीसा राज्य में साल और सियाली पत्तों का लगभग ४०० करोड़ रूपये का वार्षिक व्यापार होता है। स्थानीय लोगों को उचित दर मिलने पर हालांकि कुछ विवाद है। वन विभाग के अधिकारियों का कहना है कि, "राज्य सरकार कीमतें तय करती है और किसी भी दशा में व्यापारी पत्ती इकट्ठा करने वाले लोगों का शोषण नहीं कर सकते।" लेकिन पत्ती इकट्ठा करने वाले लोग इससे सहमत नहीं हैं - उनका कहना है कि गाँव में पत्तियां रखने के लिए गोदाम नहीं हैं और यातायात की कीमत अधिक होने के कारण गाँव वालों को पत्तियां कम दामों में ही बेचनी पड़ती हैं।

कुछ पर्यावरण विशेषज्ञों का कहना है कि लोग पत्तियां तोड़ते समय टहनियां भी तोड़ देते हैं जिससे पेड़ों को काफी नुकसान पहुंचता है। लेकिन गैर सरकारी संस्था वसुंधरा की सुश्री. पुष्पांजलि सतपती के अनुसार, "लोग पेड़ों का बहुत ध्यान रखते हैं, क्योंकि इन्हीं से उनकी आजीविका चलती है। इसके अतिरिक्त, सरकार केवल ४ से ६ महीनों तक ही पत्तियां इकट्ठी करने की इजाज़त देती है, जिससे पेड़ों को पुनर्जननन के लिए पर्याप्त समय मिल जाता है।"

स्रोतः पंचानन साहू, 'अर्निंग फार देयर प्लेट', डाउन टू अर्थ, फरवरी, २००८

संपर्कः वाई. गिरी राव, सीनियर प्रोग्राम ऑफिसर, वसुन्धरा, १५ शहीद नगर, भुवनेश्वर ७५१०१६, उड़ीसा, भारत;
फोनः ०६७४-२५४२०११; मोबाईलः ०९४३७११०९१५;
ईमेलः ygiri.rao@gmail.com

चमगादड़ों के लिए एक और आश्रय

विश्व में जहां ४५ प्रतिशत चमगादड़ प्रजातियां दुर्लभ हो चुकी हैं, या दुर्लभ होने के कगार पर खड़ी हैं, और चमगादड़ों की संख्या गिरती ही जा रही है, वहां उड़ीसा के नयागढ़ ज़िले में कुराल जैसे गाँवों से थोड़ी सी सांत्वना मिलती है। इस गाँव में चमगादड़ों को एक सुरक्षित आश्रय मिल गया है, जहां स्थानीय लोग उनके संरक्षण में सक्रिय हैं।

गाँव में कोई यह नहीं बता पाएगा कि यह संरक्षण प्रयास कब शुरू हुआ। गाँव के बड़े-बूढ़े कहते हैं कि आज़ादी से कुछ साल पहले, कुछ चमगादड़ों ने मंदिर के तालाब के पास बर्गद और अशोक के पेड़ों में आश्रय लिया था। जैसे-जैसे उनकी संख्या बढ़ती गई, वे आस-पास के पेड़ों में भी बसेरा करने लगे। गाँव वाले जानते हैं कि चमगादड़ों के कारण उनकी फसल को थोड़ा सा नुकसान पहुंचता है, पर इससे चमगादड़ों के प्रति उनकी भावनाओं में कोई बदलाव नहीं आया है।

गर्मी के मौसम में जब अकसर चमगादड़ पेड़ों से गिरकर मर जाते हैं, गाँव वाले मटकों में पानी भरकर टांग देते

हैं, जिससे यह जानवर पानी पीकर गर्मी का सामना कर सकें। गाँव वालों ने अब चमगादड़ संरक्षण के लिए एक औपचारिक ग्राम समिति भी बना ली है। यह समिति चमगादड़ों की सुरक्षा का ध्यान रखते हुए, उन्हें नुकसान पहुंचाने वालों पर जुर्माना लगाती है।

स्रोतः प्रिया एब्राहम, 'रूरल फोक्स टेक लीड टू प्रोटैक्ट बैट्स', टैलीग्राफ, भुवनेश्वर, अगस्त २००८

पश्चिम बंगाल

गंदे नाले का रचनात्मक प्रयोग

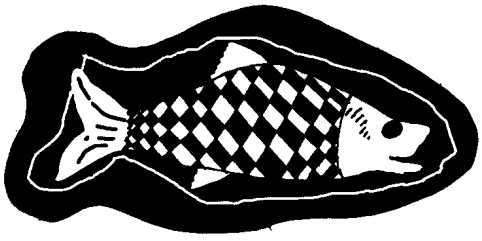

कलकत्ता शहर रोज़ाना लगभग ७५०० लाख लीटर मल पैदा करता है। और यह मल शहर के पूर्वी सीमा के जलाशयों में छोड़ा जाता है। सरकार ने इस मल की सफाई के लिए भारी मात्रा में राजस्व खर्च किया है, पर उसे कोई सफलता नहीं मिली। लेकिन यहां के स्थानीय लोगों ने इस मल की सफाई के लिए ऐसे तरीके निकाले जिससे न केवल क्षेत्र की जैव विविधता पनप रही है, बल्कि उनकी आजीविकाओं पर भी अच्छा प्रभाव पड़ रहा है। लोगों ने इस काम में क्षेत्र के कई तालाबों की श्रृंखला का प्रयोग किया है। इस मल के पानी में मछलियां पाली जाती हैं, खेतों में सिंचाई की जाती है और इस प्रकार से साफ किया हुआ पानी फिर कुटीगौंग नदी में छोड़ा जाता है।

आमतौर पर एक तालाब में प्रतिवर्ष ५ टन मछली का उत्पादन होता है। यहां पाई जाने वाली प्रजातियों में रोहू, कतला, मृगाल और तिलपिया मछलियां शामिल हैं। इन तालाबों से ८५०० लोगों को आजीविकाएं मिली हैं, शहर को नियमित रूप में मछलियां मिलती हैं, और कोलकाता के लगभग ७५०० लाख लीटर मल की सफाई होती है। यह प्रणाली पीढ़ियों से चली आ रहे पारंपरिक ज्ञान के आधार पर विकसित की गई है।

इन तालाबों में मल भरने के बाद इसे कुछ समय के लिए धूप में खड़ा रखा जाता है, जिससे कि जैविक गंद काई और कीटाणुओं के कुदरती प्रभाव से पच जाए। लोग तालाबों के आकार, गहराई को नियंत्रित रखते हैं और इसमें मल की उचित मात्रा भरने पर तय करते हैं कि इसे कितने समय तक ठहरा रखना है कि इसका गंद पच जाए। फिर वे यह तय करते हैं कि कब पानी मछलियां पालने के लिए सुरक्षित है। स्थानीय प्रजाति के सिंघाड़ों को फिर पानी में लगाया जाता है, जिससे भारी धातुएं सोख ली जाएं। इस पारंपरिक प्रक्रिया के बाद लगभग ८० प्रतिशत तक जैविक प्रदूषण कम हो जाता है।

यह मौलिक स्थानीय शैली काफी समय से बिना किसी मान्यता के चली आ रही है, जिसपर किसी ने ध्यान नहीं दिया। लेकिन हाल में इसे 'रामसर कन्वैन्शन' की मान्यता मिली और इस प्रणाली का वर्णन राष्ट्रीय पर्यावरण नीति में भी किया गया। श्री. ध्रुवज्योति घोष जो कि विश्व के जाने-माने पर्यावरण विशेषज्ञ हैं, ने इस सामुदायिक प्रणाली और इन जलाशयों के विषय में यह कहा - "किसी भी योजना को तैयार करने वाले के लिए कोलकाता जलाशय प्रणाली से सस्ता विकल्प ढूंढना मुश्किल है। यह सदियों से आस-पास की प्रकृति के संपूर्ण सामन्जस्य से चला आ रहा है।"

स्रोतः उमेश आनन्द, 'हाओ पौन्ड्स कीप अ रिवर क्लीन', सिविल सोसायटी, खंड ५, अंक ६, जुलाई २००८

सुन्दरबन के मैनग्रोव

हाल के कुछ सालों में सुन्दरबन से बाघों के शिकार, घटते मैनग्रोव जंगल और ऐसे अनेक पर्यावर्णीय और सामाजिक आपदाओं के समाचार मिलते रहे हैं। लेकिन यह स्थिति अब बदलने वाली है क्योंकि 'न्यूज़' नाम की एक संस्था ने कुछ स्थानीय महिलाओं के ज़रिए इन मैनग्रोव जंगलों के पुनजर्नन के लिए काम करना शुरू कर दिया है। यह ग्रामीण महिलाएं जानती हैं कि पृथ्वी के तापमान में वृद्धि के कारण उनके गाँव और जंगलों का अस्तित्व खतरे में है और निकट भविष्य में दोनों ही बढ़ते समुद्री जल स्तर में डूब सकते हैं - अतः मैनग्रोव

जंगलों के संरक्षण से ही इस क्षति को रोका या उसके प्रभाव को कम किया जा सकता है। इसलिए वे पिछले कुछ सालों में मैनग्रोव जंगलों को हुई क्षति से उन्हें बचाने के लिए संगठित हुई हैं।

गरन, बैन, सुंदरी, कांकरा और हेतल कुछ स्थानीय मैनग्रोव पेड़ों की प्रजातियां हैं, जो जल्दी बढ़ते हैं और भूमि का कटाव रोककर नदी के तटों के संरक्षण के कार्य में मदद करते हैं। प्रभावित क्षेत्रों जैसे मथुराखंड, अमलामेठी, त्रिदिबनगर, जमेसपुर, सोनागाँव में लगभग २०० महिलाएं ५ नर्सरियों में इन प्रजातियों के लाखों पौधे तैयार कर रही हैं। वे हीरोभंगा नदी, जो पानी घट जाने के कारण अब काफी संवेदनशील स्थिति में है, के किनारे पर भी लगभग ६०,००० पौधे लगाने की तैयारी कर रही हैं। इसके अतिरिक्त वे पौधों को मवेशियों से बचाने का प्रयास भी कर रही हैं। जो महिलाएं पहले नदी के पानी से झींगा मछली इकट्ठा करती थीं, वे अब नदी की लहरों में आये पौधों के बीज इकट्ठा करती हैं जिससे कि और अधिक पौधे जल्दी से तैयार किये जा सकें। इसके साथ-साथ यह महिलाएं अन्य गाँवों में भी बैठकें करती हैं - जिससे कि और अधिक महिलाएं मैनग्रोव संरक्षण में जुड़ जाएं। हर नज़र से यह एक प्रभावशाली प्रयास है। और यदि यह प्रयास कायम रहा और अन्य क्षेत्रों में भी फैल गया तो निश्चित ही सुंदरबन के पर्यावरण में एक प्रचंड और उन्नत बदलाव आएगा।

स्रोतः सुजीत रॉय, 'लोकल विमेन गिव बैक सुंदरवन द मैनग्रोव फॉरेस्ट', www.merinews.com, जून २००८

तारेवलाता आदिवासी

लाउरू प्रांत, सोलोमन द्वीप समूह में तारेवलाता एक आदिवासी समुदाय है जो समुद्री तट पर बसे चिवोको गाँव में रहते हैं। तारेवलाता आदिवासियों की ज़मीन उनकी अपनी है और वे इसका संरक्षण करते हैं। इस तथ्य को वहां के परंपरागत कानूनों से मान्यता प्राप्त है।

इनके परंपरागत कानून काफी सुदृढ़ हैं, पर क्योंकि बाहरी लोग इन कानूनों का आदर नहीं करते इसलिए बाहरी खतरों के सामने यह कमजोर पड़ जाते थे। इस क्षेत्र के स्वामित्व और संसाधनों के संरक्षण व प्रबन्धन के अधिकारों को औपचारिक मान्यता मिलने से यहां के पर्यावरण व आदिवासियों को काफी फायदा हुआ है।

हाल ही में इस समुदाय की सीमाओं को औपचारिक मान्यता दी गई है और इस क्षेत्र की भौगोलिक सीमाओं को परिभाषित करने वाले मानचित्र अब न्यायालय में उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त, यहां के उच्च न्यायालय ने क्षेत्र की भूमि, समुद्री चट्टानों और प्राकृतिक संसाधनों पर स्थानीय समुदाय के अधिकारों को कानूनी मान्यता भी प्रदान की है। इस कानूनी मान्यता के कारण स्थानीय संरक्षणरत समुदाय को बाहरी तत्वों द्वारा बाज़ार के लिए लकड़ी काटने और पड़ोसी क्षेत्र के लोगों द्वारा तारेवलाता क्षेत्र में लकड़ी काटने के खिलाफ लड़ने के लिए सहयोग मिला है। इस कानूनी मान्यता को प्राप्त करने में इन लोगों को 'लाउरू लैंड कॉन्फ्रेंस आफ ट्राइबल कम्यूनिटीज़'

नामक संस्था ने सहयोग किया। अतः यह समुदाय अपनी समुद्री चट्टानों और जंगलों का अपने पारंपरिक कानूनों एवं प्रथाओं के अनुसार संरक्षण कर रहा है। इन प्रथाओं में विभिन्न प्रकार के संस्थागत ढांचे और अधिकार शामिल हैं। इसमें मछलियां पकड़ने, बागवानी, स्थानीय रूप से उपलब्ध सामग्री से घर बनाने, पारंपरिक कानूनों के उल्लंघन करने पर की जाने वाली कार्यवाही के तरीके शामिल हैं। जंगलों और उनमें उपलब्ध संसाधनों के विषय में स्थानीय ज्ञान अद्भुत है- क्षेत्र में पाए जाने वाले प्रत्येक पौधे और जानवर के उपयोग (खाद्य, औषधीय तथा सांस्कृतिक) के विषय में लोगों को जानकारी है।

यहां कुछ क्षेत्रों में पेड़ कटान पर पूरी तरह से पाबंदी है, वहीं कुछ क्षेत्र में नियंत्रित रूप से पेड़ कटान की अनुमति है और कुछ अन्य क्षेत्रों में विशिष्ट उपयोग की अनुमति है। नियंत्रण की इस व्यवस्था में ज़रूरत से ज़्यादा लकड़ी उपलब्ध होने पर वे इसे बेचे जाने के लिए भी अनुमति दे देते हैं - लेकिन वे बड़े पैमाने पर व्यापार के लिए लकड़ी काटे जाने के पक्ष में नहीं है क्योंकि यह जंगल, जल और पारिस्थितिकीय तंत्र के विनाश का कारण बन जाता है।

तारेवलाता क्षेत्र में लंबे पेड़ों वाले घने मैनग्रोव जंगल और समुद्री ज्वार-भाटे से बने दलदल क्षेत्र भी आते हैं। इन जंगलों में अंदर जाना या उनका उपयोग करना पारंपरिक रूप से नियंत्रित किया जाता है। समुद्री तटों का संरक्षण समुद्री पानी की झीलों, तथा विशाल क्षेत्र में फैली विविध और जीवंत समुद्री चट्टानों से स्वतः ही हो जाता है। इस समुद्री पर्यावरण में लोगों के लिए प्रचुर मात्रा में मछली व अन्य समुद्री संसाधन पनपते हैं।

लाउरू द्वीप की जैवविविधता पूरी पृथ्वी के लिए महत्वपूर्ण है। चिवोको की समुद्री चट्टानों और समुद्री पानी की झीलें "समुद्री चट्टानों के त्रिकोण" के अधिकेन्द्र में हैं - यह त्रिकोण समूचे भूमण्डल में मूंगा चट्टानों की जैव विविधता का स्रोत है, जहां ५०० से अधिक मूंगा चट्टानों की प्रजातियां पाई जाती हैं। तारेवलाता के जंगलों में वन्यजीवों की भी भरमार है - खासकर तितलियां, घोंघे, मेंढक जैसे पानी और भूमि पर रहने वाले प्राणी (*एम्फीबियन*), सांप जैसे रेंगने वाले प्राणी (*रैप्टाईल*), चमगादड़ और पक्षी। कई सारी प्रजातियां ऐसी हैं जो सिर्फ इस क्षेत्र में पाई जाती हैं, जैसे कि ऑर्किड प्रजातियों के फूल। चूंकि सौलोमन द्वीप समूह के निचले क्षेत्रों के जंगलों का पेड़ कटान और अवकर्षण के कारण विनाश हो चुका है, तारेवलाता के जंगल यहां के उत्कृष्ट प्राकृतिक आवास के रूप में और भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

यहां सामुदायिक निर्णय मुखिया द्वारा लिये जाते हैं जिसके लिए पहले के मुखियाओं द्वारा निर्धारित नियम और कानून पथ प्रदर्शन करते हैं। इसके साथ ही, बड़े-बूढ़ों की एक समिति भी है जिसे मुखिया के निर्णय का निषेधाधिकार प्राप्त है और यह समिति लोगों के पक्ष में प्रस्ताव रख सकती है। धार्मिक गुरू भी मुखिया का पथ-प्रदर्शन करते हैं। प्रत्येक मुखिया अपनी समझबूझ के अनुसार समय की ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए परंपरागत नियमों में बदलाव करता है।

जहां एक ओर आदिवासी अपने जंगलों की जैवविविधता का संरक्षण और प्रबन्धन करने में सक्षम हैं, वहीं समुद्री जैव विविधता के संरक्षण और प्रबन्धन के विषय में उन्हें बहुत ज़्यादा जानकारी नहीं है। इस क्षेत्र में अपनी समझ और क्षमताएं बढ़ाने के लिए यह आदिवासी समुदाय अब 'नेचर कनज़रवैंसी' नामक संस्था के साथ काम कर रहा है।

अतः तारेवलाता समुदाय के पास एक अच्छा मिश्रण है - पारंपरिक ज्ञान का लाभ, मज़बूत परांपरागत कानून, इन कानूनों की औपचारिक मान्यता और ऐसे संस्थागत ढांचे जो एक तरफ परंपरा और पारंपरिक ज्ञान में ढले हैं और यह भी समझते हैं कि वर्तमान खतरों के विषय में चर्चा करके उनसे कैसे उभरा जा सकता है।

स्रोतः दाओ नूयेन और जिमि केरेसेका, 'द तारेवालाता 'कास्तोम' कनज़रवेशन एरिया, चिवोको, लाउरू आईलैंड सौलोमन आईलैंड्स'

सूक्ष्म ऋण में क्या छिपा है ?

बांग्लादेश एक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्था है - जहाँ की ज़्यादातर जनसंख्या खेती पर निर्भर करती है। आजकल वहां की सरकार पहले से चली आ रही जीवंत जैवविविध कृषि प्रजातियों को आयात किये हुए *हायब्रिड* (बीज जिनकी जीन श्रृंखला में बदलाव किया जाता हो) बीजों से बदलने में लगी हुई है। कृषि मंत्रालय के अनुसार, पिछले साल ५२०० टन हायब्रिड बीज का उपयोग किया गया और इस वर्ष यह मात्रा बढ़ कर १२,१४८ टन हो गई

है। इसमें से १०,३४८ टन बीज आयात किया गया और केवल १८०० टन का उत्पादन देश में किया गया। हायब्रिड बीज को सूक्ष्म-ऋण (*माइक्रो-क्रैडिट*) संस्थाओं के माध्यम से ऋण योजनाओं के अंतर्गत बांटा जा रहा है। यह बीज स्थानीय बीजों के मुकाबले काफी महंगे होते हैं।

स्थानीय जैवविविध अनाज को कुछ गिनी चुनी आयात की हुई हायब्रिड अनाज प्रजातियों से बदले जाने के पीछे सरकार यह कारण बताती है - देश में अनाज की भारी कमी हो रही है। उस पर भी बाढ़ और सिद्र (साइक्लोन) जैसी प्राकृतिक आपदाओं के चलते भारी मात्रा में फसलों को नुकसान हो रहा है। अधिकारियों का कहना है कि उत्पादकता बढ़ाने का यह एकमात्र तरीका है।

श्री. सुकान्त सेन, जो 'बांग्लादेश रिसोर्स सैंटर फार इंडिजिनस नौलेज' नामक संस्था के अध्यक्ष हैं, का कहना है कि उच्च बरिसाल क्षेत्र में सरकार हायब्रिड धान को बढ़ावा दे रही है। जबकि वर्ष २००१ में इस क्षेत्र से स्थानीय उच्च उत्पादकता वाले बीजों से ही ज़रूरत से बहुत ज़्यादा मात्रा में अनाज प्राप्त हुआ था। भोला, बरगुणा, बरीसाल, पतुआखाली और पिरोज़पुर जिलों में ५५ लाख टन की मात्रा में ज़रूरत से अधिक धान उसी वर्ष प्राप्त हुआ था।

कृषि वैज्ञानिक भी इस ओर इशारा करते हैं कि हायब्रिड प्रजातियों के कारण क्षेत्रीय जैवविविधता का विनाश हो जाता है। श्री. ज़ैड. करीम, पूर्व सचिव एवं कृषि विशेषज्ञ का कहना है - "यह बहुत चिंताजनक है कि इस बदलाव से हमारे मौसम पर होने वाले प्रभावों के विषय में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है।"

इस बीच, सूक्ष्म ऋण और सरकारी नीतियां देश की अन्न सुरक्षा, लाखों किसानों के नियंत्रण से छीनकर कुछ ४ या ५ बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथों में सौंपती जा रही हैं। इस कदम से देश की जैवविविधता और लाखों लोगों की आजीविकाओं पर नकारात्मक प्रभाव पड़ेगा।

स्रोतः पिनाकी रॉय, 'सीड्स ऑफ मार्किट - बंगलादेश प्रमोट्स हायब्रिड राइस ओवर लोकल वैराईटीज़,' डाउन टू अर्थ, अप्रैल, २००८

समुदाय व संरक्षण
अंक २, नं.१, जनवरी २००६
संपादकः एरिका तारापोरवाला
परामर्शः नीमा पाठक
संपादकीय सहयोगः अनुराधा अर्जुनवाडकर
फोटोः आशीष कोठारी, पर्सिस तारापोरवाला
चित्रांकनः मधुवंती अनंतराजन
अनुवादः निधि अग्रवाल
निर्माणः कल्पवृक्ष, अपार्टमेन्ट ५ श्री दत्तकृपा, ६०८ डेक्कन जिमखाना, पुणे-४११००४
फोनः ९१-२०-२५६७५४५०,
फोन/फ़ैक्सः ९१-२०-२५६५४२३६
ईमेलः kvoutreach@gmail.com
वेबसाइटः www.kalpavriksh.org

आर्थिक सहयोगः मिज़रिओर, जर्मनी

निजि वितरण के लिए

प्रकाशित विषयवस्तु

सेवा में,